Vol. 12, Issue: 01, January: 2023
ISSN: (P) 2347-5412 ISSN: (O) 2320-091X

# गुप्तकाल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी

डॉ. मानवेन्द्र सिंह परिहार
सहायक आचार्य
चौधरी बेचेलाल महाविद्यालय,
रसूलपुर, धौरहरा, लखीमपुर–खीरी

तीसरी सदी के अन्त में प्रयागराज के निकट कौशम्बी में गुप्त वंश का उदय हुआ। श्रीगुप्त को गुप्त वंश का संस्थापक माना जाता है, जो सम्भवतः कुषाणों का स्थानीय सामन्त था,[i] लेकिन जायसवाल (1933) ने इसे भारशिवों का सामन्त माना है, जबकि चट्टोपाध्याय ने इसे शकों का सामन्त कहा है। इस वंश का आरम्भिक राज्य बंगाल और बिहार में था।[ii] श्रीगुप्त के बाद घटोत्कच गुप्त राजा बना जिसके पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपना आधिपत्य मध्यगंगा, प्रयाग, साकेत और मगध पर स्थापित कर स्वतंत्र एवं शक्तिशाली गुप्त सामाज्य की नींव डाली।[iii] गुप्तकाल से पूर्व भी विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई थी, लेकिन गुप्तकाल में विज्ञान प्रौद्योगिकी की विभिन्न विधाओं–गणित, ज्योतिष, रसायन, धातु विज्ञान, मुद्रा तकनीक व वास्तु तकनीक आदि में अनूठा विकास हुआ।[iv]

गुप्तकाल में गणित के क्षेत्र में आर्यभट का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आर्यभट ने अपने ग्रन्थ श्आर्यभटीयमश के 'गणितपाद' के 33 श्लोकों में अंकगणित, रेखागणित और बीजगणित के प्रमुख नियम संक्षेप में स्पष्ट किये हैं। गणितपाद के दूसरे श्लोक में उन्होंने एक से लेकर वृंद (अरब) तक की संख्या–संज्ञाएं[v] दी हैं जिसमें दशमलव पद्धति की भाँति हर अगला अंक पिछले अंक से दस गुना ज्यादा होता है। आर्यभट ने वृत्त की परिधि और व्यास का जो अनुपात दिया है, वह चार दशमलव स्थानों तक शुद्ध है।[vi] इसे भी उन्होंने सन्निकट (आसन्न) मान माना है। आर्यभट–प्रथम को स्पष्टतः इस बात की जानकारी थी कि परिधि/व्यास का मान पूरी तरह शुद्ध रूप से ज्ञात करना असंभव है इसलिए उन्होंने इसे आसन्न मान कहा है।[vii] आर्यभटीय गणितपाद के कुछ लोकों में बीजगणित की संक्रियाओं का उल्लेख मिलता है।[अपपप] 'बीज' शब्द सर्वप्रथम 'आर्यभट्ट' की भास्कर प्रथम (629 ई0) द्वारा रचित टीका में देखने को मिलता है। आर्यभट्ट–प्रथम पहले भारतीय वैज्ञानिक हैं जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और नक्षत्रों का गोल स्थिर है।[ix, x] आर्यभट्ट–प्रथम ने अपने ग्रन्थ में ग्रहणों के सही कारण भी बताये हैं। वे गोलपाद के एक श्लोक में लिखते हैं– ''सूर्यग्रहण के अवसर पर सूर्य को चंद्रमा ढक लेता है और चंद्रग्रहण के अवसर पर पृथ्वी की बड़ी छाया चन्द्रमा को ढक लेती है।''[xi]

आर्यभट्ट के सिद्धान्त पर भास्कर प्रथम ने टीका लिखी। भास्कर के तीन अन्य महत्व पूर्ण ग्रन्थ है– 'महाभास्कर्य', 'लघुभास्कर्य' एवं 'भाष्य'। ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्म सिद्धान्त की रचना की और बताया कि प्रकृति के नियम के अनुसार समस्त वस्तुएं पृथ्वी पर गिरती है, क्योंकि पृथ्वी अपने स्वभाव से सभी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती है।[xii] यह सिद्धान्त आधुनिक समय के न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त है जिसकी खोज बहुत पहले गुप्तकाल में ब्रह्मगुप्त ने कर ली थी।

वराहमिहिर गुप्तकाल के एक महान और विख्यात खगोलविद् तथा ज्योतिर्विद थे। उनका 'पंचसिद्धान्तिका'[xiii] भारतीय खगोल विज्ञान का एक रोचक एवं ऐतिहासिक ग्रंथ है।''[xiv] आचार्य वराहमिहिर ने न केवल फलित ज्योतिष को ही जन्म दिया, बल्कि तत्कालीन अपेक्षित बीज–संस्कारों द्वारा गणित ज्योतिष की गणनाओं को अधावधि Up To Date (नच जव कंजम) भी किया।[xv] गणित व त्रिकोणमिति की जानकारी के कारण गणितशास्त्र के इतिहास में इस ग्रन्थ का महत्वपूर्ण स्थान है।''[xvi] इनके एक अन्य ग्रन्थ 'वृहत्संहिता' में नक्षत्र–विद्या, वनस्पतिशास्त्र, प्राकृतिक इतिहास, भौतिक भूगोल जैसे विषयों का वर्णन मिलता है।''[xvii]

चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से भी गुप्तकाल अछूता नहीं रहा। चिकित्सा के क्षेत्र में प्रसिद्ध आयुर्वेदाचार्य बाग्भटट् एवं धन्वंतरि का नाम मिलता है। बाग्भटट् ने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टांगहृदय' की रचना की। गुप्तकालीन चिकित्सकों को श्शल्य चिकित्सा के सम्बन्ध में भी जानकारी थी, जो सम्भवतः वेदों में वर्णित चिकित्सा विधियों पर आधारित था, आयुर्वेद के मूल ग्रन्थ 'चरक' और 'सुश्रुत' थे।''[xviii]

धातु–विज्ञान से भी गुप्तकालीन लोग भलीभाँति परिचित थे। इन्हें केवल धातुओं की जानकारी ही नहीं थी. बल्कि उसका वैज्ञानिक दृष्टि से प्रयोग करना भी आता था। इसका जीता–जागता उदाहरण चन्द्र का मेहरौली लौह स्तम्भ है जो दिल्ली में कुतुबमीनार के समीप है। इसका निर्माण चौथी शताब्दी में हुआ तब से डेढ़ हजार वर्ष बीत जाने के बाद भी इसे जंग नहीं छू पायी है[xix] जो धातुशिल्प की उत्कृष्ट तकनीकि का प्रमाण है। इसकी धातु तकनीकि आज भी वैज्ञानिकों के लिए आश्चर्य की विषयवस्तु बनी हुई हैं। खेद का विषय है कि इस धातु–तकनीक को परवर्ती शिल्पकार आगे नहीं बढ़ा सके।[xx] गुप्त शासकों ने धातु–निर्मित मूर्तियों का भी निर्माण करवाया। इनकी अधिकतर मूर्तियाँ हिन्दू देवी–देवताओं से सम्बन्धित हैं। गुप्तकालीन मूर्तियों की मुद्रा–तकनीक में कुषाणकालीन मूर्ति तकनीक से भिन्न थी। कुषाणों की मूर्तियों में नग्नता एवं कामुकता दिखाई देती है, किन्तु गुप्तकालीन मूर्तियों को वस्त्र पहने हुए दिखाया गया है। गुप्तों के समय की तीन बौद्ध मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं–सारनाथ में बुद्ध की बैठी हुई मूर्ति, और मथुरा की खड़ी बुद्ध मूर्ति एवं सुल्तानगंज में कांसे की साढ़े सात फीट ऊँची बुद्ध मूर्ति। इनके अतिरिक्त वैष्णव एवं शेव एकमुखी एवं 'चतुर्भुजी' शिवलिंग का निर्माण भी सर्वप्रथम गुप्तकाल में ही हुआ। शिव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप की मूर्ति तकनीक इसी समय पहली बार देखने को मिलती है। धातुमूर्तियों के अलावा मृणमूर्तियों की तकनीक भी गुप्तकाल में विकसित अवस्था में थी।''[xxi]

मूर्तिकला–तकनीक के अतिरिक्त चित्रकला की तकनीक भी गुप्तों के समय उच्च शिखर पर थी।[xxii] वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार गुप्तकाल में चित्रकला अपनी पूर्णता को प्राप्त हो चुकी थी।[xxiii] गुप्तकालीन चित्रकला के उदाहरण हमें महाराष्ट्र प्रान्त की अजन्ता गुफाओं तथा म.प्र. की ग्वालियर के समीप स्थिति बाघ गुफाओं से मिलते हैं। अजन्ता के गुफाओं की खोज सन् 1819 ई. में मद्रास सेना के कुछ यूरोपीय सैनिकों द्वारा की गयी थी। 1824 ई. में सर जेम्स अलेक्जेंडर ने रायल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका में प्रथम बार इसके विवरण को प्रकाशित कर संसार को दुर्लभ चित्रों के बारे में जानकारी दी। दसवीं गुफा (सामजातक व छः दन्तजातक की कथाएं). सोलहवीं गुफा (मरणासन्न राजकुमारी का चित्र) सत्रहवीं गुफा (बुद्ध और उनसे सम्बन्धित कथाएं) के चित्र गुप्तकालीन हैं। इनको बनाने के लिए वैज्ञानिक ढंग का प्रयोग किया गया है। इसमें अलंकरण, चित्रण, वर्णन तीन प्रमुख विषय हैं।[xxiv] इन चित्रों में आज भी सजीवता विद्यमान है।[xxv] गुप्तकालीन चित्रकला एवं वैज्ञानिक तकनीकि का उत्कृष्ट उदाहरण बाघगुफाओं की चित्रकला है जो विन्ध्य पर्वत

को काटकर बनायी गयी हैं। 1818 ई0 में डेंजर फील्ड ने इन गुफाओं की खोज की, इनकी संख्या 9 है। इनके चित्र मनुष्य के लौकिक जीवन से सम्बन्धित हैं।[xxvi]

गुप्तकाल वास्तुकला की तकनीक भी बहुत अच्छी थी। वास्तुकला के सर्वोत्तम उदाहरण उस काल के मन्दिर हैं। मन्दिर निर्माण की तकनीक का विकास यहीं से होता है। इससे पहले भारतीय इतिहास में मन्दिरों का उल्लेख नहीं मिलता। इस समय मन्दिर एक ऊँचे चबूतरे पर बनाया जाता था। चबूतरों पर चढ़ने के लिए चारों ओर सीढ़ियां बनायी जाती थीं। देवता की मूर्ति को गर्भगृह में स्थापित किया जाता था। गर्भगृह के चारों ओर ऊपर से आच्छादित प्रदक्षिणा मार्ग का निर्माण किया जाता था। गुप्तकालीन मन्दिरों में पार्श्व पर गंगा, यमुना, शंख व पदम की आकृतियाँ बनायी जाती थी। मन्दिरों की छतें प्रायः सपाट होती थीं, पर शिखरयुक्त मन्दिरों के अवशेष भी मिले हैं। गुप्तकालीन मन्दिर ईटों एवं पत्थरों से भी बनाए जाते थे।''[xxvii] ईंटों से निर्मित मन्दिर के उदाहरण भीतरगाँव तथा सिरपुर के मन्दिर हैं।[xxviii] गुप्तकालीन प्रमुख मन्दिर इस प्रकार हैं– सांची का मन्दिर, तिगवा का विष्णु मन्दिर, एरण का विष्णु मन्दिर, नचना कुठार का पार्वती मन्दिर, भूमरा का शिव मन्दिर एव देवगढ़ का दशावतार मन्दिर।

''मन्दिर वास्तुकला के अतिरिक्त गुप्त, स्तूपों तथा गुहा स्थापत्य की तकनीक से भी भलीभाँति परिचित थे। गुहा स्थापत्य का विकास भी गुप्तकाल में ही हुआ। ये दो प्रकार की हैं, ब्राह्मण तथा बौद्ध यहाँ की गुफाएं भागवत तथा शैवधर्म से भी सम्बन्धित हैं।[xxix] उदयगिरि पहाड़ी से चन्द्रगुप्त द्वितीय के विदेश सचिव वीरसेन का एक लेख प्राप्त होता है जिससे विदित होता है कि यहाँ उसने शैव गुहा का निर्माण करवाया था। गुप्तों की प्रसिद्ध वराह–गुहा भगवान विष्णु से सम्बन्धित है। बौद्ध गुहा मन्दिर भी इस काल में बनाए गये। अजन्ता की 29 गुफाएं में चार चौत्यगृह और शेष विहार हैं।[xxx] गुप्त शासकों ने मुद्रा–तकनीक के क्षेत्र में काफी प्रगति की गुप्त राजाओं की स्वर्ण मुद्राएं मूलतः कुषाणों के समान थीं।[xxxi] किन्तु पाँचवी शताब्दी के मध्य में उनका वजन 144 ग्रेन तक बढ़ गया और पुनः भारत के ताम्र कार्षापण के बराबर हो गयी। गुप्तों के रजत सिक्कों का वजन शक मुद्राओं की तरह 32–36 ग्रेन तक तक था । ताम्र सिक्कों की भारावस्था अनिश्चित है। इसकी पुष्टि 3.3 ग्रेन से 101 ग्रेन तक होती है।[xxxii] गुप्तों के सिक्कों के विभिन्न प्रकारों एवं उस पर बने चित्रों की तकनीक से गुप्त राजाओं के व्यक्तित्व एवं गुप्त साम्राज्य की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।[xxxiii]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल प्राचीन भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण काल था, जिसमें विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने अभूतपूर्व प्रगति की थी। विकसित मुद्रा टकसाल, उत्कृष्ट लौह तकनीकि, विशिष्ट चित्रकला, गुहा एवं मन्दिर स्थापत्य तकनीकि के उदाहरण विवेच्यकालीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास की पुष्टि करते हैं। आधुनिक समय में इस विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को नकारा नहीं जा सका है आज भी वैज्ञानिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में गुप्तकालीन तकनीकि का लोहा मानते हैं।

## सन्दर्भ

[i] महाजन, वी.डी., एंशिएंट इण्डिया, एस० चाँद एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली, 1960, पृ. 525.

[ii] बाजपेयी, के.डी., इण्डियन न्यूमिस्मेटिक स्टडीज, अभिनव पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ. 543.

[iii] जे.बी.आर.एस., 19 मार्च जून 1933, पृ. 115–16.

[iv] त्रिपाठी, रमाशंकर, प्राचीन इतिहास का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971, पृ. 194.

[v] आर्यभटीय, आर्यभट कृत (सूर्यदेव यज्वन् की टीका सहित) संपादक के.वी. शर्मा, इंडियन नेशनल साइंस एकेडेमी, नई दिल्ली, 1976, गणितपाद, 2 एक दशं च शतंच सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतं। कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात्स्थानं दशगुणं स्थात् ।। 12।।

[vi] आर्यभटीय गणितपाद, 10: चतुरधिकशतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम् । अयुतद्वय विस्कंभस्यासन्नो वृत्तपरिणाह ।।10।।

[vii] दीक्षित, शंकर बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष शास्त्र (मराठी), आर्यभूषण प्रिण्टर्स, पूना, सेकेण्ड एडीशन, 1931, पृ. 195.

[viii] उपाध्याय, ब०ल०, प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती, नई दिल्ली, 1971, पृ. 185.

[ix] आर्यभटीयम्, गणितपाद, 6 प्राणेनैति का मूं 116

[x] आर्यभट्ट, गणितपाद 3 युगरविभगणाः ख्यघृ शशि चयगियिङुशुछ्लृ कुडिशिषुण्लृ ख्टप्राक्। शनि दुविध्व गुरू खिच्युभ कुज भदूलिक नुख भृगबुध सौराः । 13 ।।

[xi] आर्यभटीय, गोलपाद, 37 : चन्द्रो जलमर्कोऽग्निर्मृदभूच्छायापि या तमस्तद्धि। छादयति शशि सूर्य शशिनं महती च भूच्छाया 137

[xii] थामस, जोशी, एलीमेन्ट्री नम्बर थ्योरी विद् एप्लीकेशन, पृ0 567।

[xiii] पंचसिद्धान्तिका, वराहमिहिर कृत, जी. थीवो तथा सुधाकर द्विवेदी व्याख्या सहित, 1889.

[xiv] जग्गी, ओ०पी०, प्राचीन भारत के वैज्ञानिक एवं उनकी उपलब्धियाँ, आत्माराम एण्ड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 131.

[xv] उपाध्याय, ब.ल., प्राचीन भारतीय गणित, पूर्वोद्धृत, पृ. 44.

[xvi] प्रभु पंढरीनाथ, भारत में शास्त्रों का उद्गम और विकास, हिन्दी अनु० केशव प्रथमवीर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988, पृ.–47

[xvii] झा, डी.एन., प्राचीन भारत एक रूपरेखा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली, 1997, पृ. 121.

[xviii] बाशम, ए.एल., अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं०, आगरा, 1987, पृ. 367.

[xix] 1912 में हेडफील्ड ने पहली बार इस लौह स्तम्भ के बहुआयामी मापन के अतिरिक्त रासायनिक विश्लेषण भी किया था (हेडफील्ड, आर. जे.बीआर.आयरन स्टील इन्स्ट., 1912, 85रू134)। इसके उपरान्त 1945 में बी.बी. लाल ने इसका रासायनिक विश्लेषण किया। 1961 में स्तम्भ के कुछ भागों में जंग पाये जाने पर इसको रासायनिक उपचार हेतु खोदा गया। परीक्षण में इसके जमीन में दबे भाग पर 1.5 मिमी. से 15 मिमी की गहराई तक जंग का असर पाया गया। रासायनिक उपचार करने के उपरान्त इसे पुनः स्थापित कर दिया गया (लाल, बी.बी., दि देहली आयरन पिलर, इट्स आर्ट, मेटलर्जी एण्ड इंस्क्रृप्संस, संपा. जोशी, एम.सी.. गुप्ता, एस.के. एवं गोयल, एस० कुसुमांजलि बुक वर्ल्ड, जोधपुर, 1996, पृ. 22–58)। 1963 में निझावन व उनके सहयोगियों ने इस स्तम्भ के 4 ग्राम के एक टुकड़े का स्पेक्ट्रो–कैमिकल परीक्षण कर धातु के अवयवों का पता लगाया (लहरी, ए.के., बनर्जी, टी. एवं निझावन, बी.

आर., एन.एम.एल. टेक.जे., 1963)। वर्ष 1989 में बिन्दाल व उनके साथियों ने अल्ट्रासोनिक की पल्स–इको तकनीकि द्वारा इस स्तम्भ के सूक्ष्म संरचनात्मक लक्षणों का परीक्षण किया (बिन्दाल, वी.एन. कुमार, ए., सोम, जे०एन०, चन्द्रा, एस., कुमार, वाई. एवं लाल, जे.., अल्ट्रासोनिक इंटरनेशनल, 89, कांफ्रेंस प्रोसीडिंग्स, मैड्रिड, जुलाई 1989, पृ. 95–100)

[xx] बाशम, ए.एल., अद्भुत भारत, पूर्वोद्धृत, पृ. 367.

[xxi] त्रिपाठी, रमाशंकर, प्राचीन इतिहास का इतिहास, पूर्वोद्धृत, प. 188.

[xxii] बेन्जामिन, रॉलेण्ड, द आर्ट एण्ड आर्टिक्चर ऑफ इण्डिया, पेंगुविन, 1956 0129–30

[xxiii] अग्रवाल, बी.एस., वाकाटक गुप्त ऐज, वाराणसी, 1998, पृ0 447.

[xxiv] जे.आर.ए.एस., 1914, पृ. 335.

[xxv] ग्रीविथ द पेंटिग ऑफ बुद्धिष्ठ केव्स ऑफ अजन्ता, पृ०7

[xxvi] आनन्द, मुल्कराज, भाग 25, सं. 3, पृ. 39.

[xxvii] रे, निहार रंजन, द क्लासिकल ऐज, पृ. 501.

[xxviii] अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, पृ. 310–11.

[xxix] रे, निहार रंजन, द क्लासिकल ऐज, पृ. 525

[xxx] उपाध्याय, उदय नारायण, भारतीय कला एवं स्थापत्य, दिल्ली, 2007, पृ. 181

[xxxi] श्रीवास्तव, प्रशान्त, द स्टोरी ऑफ अर्ली इण्डियन क्वायन्स, पनार, पब्लिकेशन, लखनऊ, पृ. 20.

[xxxii] एलन, जे., कैटलॉग ऑफ क्वायन्स इन द ब्रिटिश म्युजियम, एन्शियन्ट इण्डिया, पृ. 40.

[xxxiii] गुप्ता, पी.एल., प्राचीन भारतीय मुद्राएं, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1995, पृ. 67.